International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 252-255

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 252-255
© 2017
www.anantaajournal.com
Received: 01-05-2017
Accepted: 02-06-2017

डॉ0 राकेश शर्मा
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय अर्की, सोलन,
हि0 प्र0, भारत

Correspondence
डॉ0 राकेश शर्मा
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय अर्की, सोलन,
हि0 प्र0, भारत

वेद–वर्णित आयुर्वेद – एक विवेचन

डॉ0 राकेश शर्मा

सारांश
आयुर्वेद विश्व की विविध एवं पुरातन चिकित्सा पद्धतियों में से एक है। इसको हम वेद का विस्तार तथा विज्ञान, कला और दर्शन का मिश्रण भी कह सकते हैं। आयुर्वेद का अर्थ है–जीवन का ज्ञान। इसे ही हम संक्षेप में आयुर्वेद का सार कह सकते हैं। विश्व की सभ्यता और संस्कृति का मूलाधार कहे जाने वाले 'वेदों' में भी आयुर्वेद के सिद्धान्त यत्र–तत्र निरूपित है। इस शोध पत्र के माध्यम से वेदों में वर्णित आयुर्वैदिक विषयों, आयुर्वेद के उद्देश्य एवं अंग, आयुर्वैदिक चिकित्सा के भेद, वैद्य के कर्त्तव्य तथा नीरोग एवं दीर्घायु के उपायों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है, जिसकी मानव जीवन में विशेष उपयोगिता है। वर्तमान समय में भी बढ़ रहे रोगों से निजात पाने में आयुर्वेद विशेष भूमिका निभा रहा है। भारत में ही नहीं विदेशों में भी आयुर्वेद पर कई शोध हो रहे हैं जो इसकी महत्ता को प्रतिपादित करते हैं।

कूट शब्दः वेद–वर्णित आयुर्वेद, विज्ञान, दर्शन, सभ्यता, संस्कृति

प्रस्तावना
वेद सम्पूर्ण संसार की संस्कृति के स्तम्भ हैं। इनसे न केवल भारतीय संस्कृति प्रभावित है बल्कि विश्व के महान विद्वान भी प्रभावित है। विदेशी विद्वान भी मुक्तकण्ठ से वेदों के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। इनका साहित्यिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भाषा–विज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। वेदों के माध्यम से हम अपने पूर्वजों की सभ्यता और संस्कृति को जान सकते हैं। इनका अध्ययन करने से प्राचीन ऋषि–मुनियों के विचारों, रहन–सहन, व्यावहारादि का ज्ञान प्राप्त होता है। वेद हमारे लिए कल्याण का मार्ग है। धार्मिक दृष्टि से तो वेदों का सर्वाधिक महत्त्व है। यही कारण है कि 'मनु' ने अपने ग्रन्थ मनुस्मृति में वेदों को सभी धर्मों के मूल के रूप में स्वीकार किया है– वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।[1] हमारे जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है जिसका दर्शन एवं ज्ञान हमें वेदों में न होता हो। इसी कारण 'वेद' शब्द ''विद'–ज्ञाने धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है–ज्ञान। मनु ने 'मनुस्मृति' में भी वेद को सभी तरह के ज्ञान से सम्पन्न कहा है–''सर्वज्ञानमयो हि सः''[2] अर्थात् वेदों में सभी प्रकार का ज्ञान और विज्ञान निहित है इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इसकी विशेष उपयोगिता है। वेद की सर्वज्ञानमयता एवं सर्वप्रकाशकता के कारण ही हम सभी लोगों के लिए वेदों का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

आयुवेद शास्त्र की दृष्टि से वेदों का अध्ययन करने पर अवगत होता है कि वेदों में आयुर्वेद के विभिन्न अंगों एवं उपांगों का कई स्थलों पर विस्तृत वर्णन मिलता है। 'आयुर्वेद और आयुर्विज्ञान' दोनों ही चिकित्सा शास्त्र हैं दोनों शास्त्रों का सम्बन्ध आयु से ही है अर्थात एक शब्द में आयु के साथ 'वेद' शब्द जुड़ा है, तो दुसरे के साथ विज्ञान शब्द। दोनों का एक ही उद्देश्य है– आयु का ज्ञान प्रदान करते हुए रोगी के रोग को दूर करना तथा स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना। व्यावहारिक रूप से हम कह सकते हैं कि चिकित्सा शास्त्र के प्राचीनतम भारतीय ढंग को आयुर्वेद कहते हैं और ऐलोपैथिक प्रणाली को आयुर्विज्ञान का नाम दिया जाता है। ''आयुषो वेदः आयुर्वेदः– आयु का ज्ञान प्रदान करने वाला शास्त्र आयुर्वेद है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन एवं आत्मा का संयोग ही आयु कहलाता है। वनस्पति एवं प्राणिजगत आदि सम्पूर्ण सजीवों का ज्ञान आयुर्वेद प्रदान करता है। इसीलिए आयुर्वेद की विभिन्न संहितांए भी रची गई है जैसे–वृक्षायुर्वेद, अश्वायुर्वेद, हस्त्यायुर्वेद, हयायुर्वेद, गजायुर्वेद इत्यादि। आयुर्वेद का रचनाकाल अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। संसार की सबसे प्राचीनतम पुस्तक 'ऋग्वेद संहिता' में आयुर्वेद की महत्ता का वर्णन किया गया है, जिसका रचनाकाल विभिन्न विद्वानों ने 3000ई0 पू0 से 5000 ई0 पू0 माना है। इसी तरह कई विद्वान भी आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद मानते हैं जिससे आयुर्वेद की प्राचीनता सिद्ध होती है। अतः हम कह सकते हैं कि आयुर्वेद का रचना काल ईसा पूर्व 3000 से 5000 वर्ष पहले अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति के आस–पास का ही है।

वेदों में आयुर्वेद

आयुर्वेद की दृष्टि से अथर्ववेद को एक महान ग्रन्थ के रूप में माना गया है क्योंकि आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग माना गया है और इसमें आयुर्वेद के सभी अंगों का विस्तार से वर्णन मिलता है । यदि हम अथर्ववेद को आयुर्वेद का मूलाधार माने तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। अथर्ववेद के साथ–साथ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद में भी आयुर्वेद के महत्वपूर्ण तथ्यों, आयुर्वेद से सम्बन्धित विविध विषयों का कई स्थलों पर विवेचन प्राप्त होता है। वेदों में आयुर्वेद के उद्देश्य एवं अंग, वैद्य के गुण–कर्म, विभिन्न औषधियों के प्रकार एवं उनसे होने वाले लाभ, विविध चिकित्साएँ, दीर्घायु प्राप्ति के साधन, नीरोगता, तेज, बल, वशीकरण, कुस्वप्न–नाशन, अग्नि और जल के गुण इत्यादि विभिन्न विषयों का वर्णन कई स्थलों में आया है, जिसका संक्षिप्त रूप से वर्णन करते हैं–

वेदों में आयुर्वेद के उद्देश्य एवं अंग–

चरक–संहिता में आचार्य चरक ने कहा है– 'आयुवेदयति इति आयुर्वेद'[3]। अर्थात् जो आयु का ज्ञान कराता है और मनुष्य की आयु के लिए कल्याणकारी और हानिकारक वस्तुओं का वर्णन करता है, वही आयुर्वेद है। आयुर्वेद ही सुखदायी एवं दुःखदायी कारणों, आयुवर्धक एवं आयुनाशक द्रव्यों के गुणों का विवेचन करता है। आयुर्वेद के मुख्य रूप से दो उद्देश्य है–

स्वस्थ व्यक्तियों के स्वास्थ्य की रक्षा करना– इसके लिए अपने शरीर और प्रकृति के अनुकूल देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार विचार करके नियमित आहार–विहार, चेष्टा, व्यायाम, शौच, स्नान, शयन, जागरण आदि गृहस्थ जीवन के लिए उपयोगी शास्त्रोक्त दिनचर्या का पालन करना अनिवार्य है।

रोगी व्यक्तियों के विकारों को दूर कर इन्हें स्वस्थ बनाना– इसके लिए प्रत्येक को रोग के कारण, रोगपरिचायक विषय तथा औषध का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। वेदों में आयुर्वेद के उद्देश्यों का वर्णन विविध मन्त्रों की प्रार्थना के द्वारा किया गया है, जैसे– मृत्यु या रोग के कारणों का उन्मूलन, दीर्घायु या शतायु की प्राप्ति होना, आचार एवं विचारों की पवित्रता, शरीर एवं आत्मा का हृष्ट–पुष्ट होना, विविध रोगों के जनक कीटाणुओं का विनाश, शारीरिक एवं मानसिक रोगों से मुक्ति प्राप्त करना इत्यादि। इनमें आयुर्वेद के मूलभूत तत्त्व भी समाहित हैं।

वेदों में आयुर्वेद के मुख्य आठ अंगों का कहीं पर भी स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है, अपितु यत्र–तत्र ही उनका वर्णन है जिससे प्रतीत होता है कि आयुर्वेद के 8 अंगों का विभाजन आयुर्वैदिक आचार्यों ने बाद में ही किया था। ये आठ अंग है– कायचिकित्सा (शरीरसम्बन्धित चिकित्सा) शालाक्य चिकित्सा (उर्ध्वांग चिकित्सा), शल्यचिकित्सा, विषचिकित्सा (अंगदतन्त्र), बालचिकित्सा (कौमारभृत्य), ग्रहचिकित्सा, (भूतविद्या), जराचिकित्सा (रसायनतन्त्र), वृषचिकित्सा (वाजीकरण)।[4] वेदों में कायचिकित्सा, विषचिकित्सा, शालाक्यचिकित्सा और शल्यचिकित्सा इन चार चिकित्साओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। बाल चिकित्सा, ग्रहचिकित्सा, रसायन और वाजीकरण की चिकित्सा का वर्णन अल्प मात्रा में मिलता है।

वेद में वर्णित आयुर्वैदिक–चिकित्सा प्रणाली

अथर्ववेद में आयुर्वेद की चिकित्सा प्रणाली को चार भागों में विभाजित किया गया है–1 आथर्वणी चिकित्सा 2 आंगिरसी चिकित्सा 3 मानुषी 4 दैवी।[5]

1 आथर्वणी चिकित्सा– अथर्वा ऋषि से इसका सम्बन्ध होने के कारण इस चिकित्सा को आथर्वणी चिकित्सा के नाम से पुकारा जाता है। कतिपय विद्वानों के अनुसार यह चिकित्सा ध्यान, मनन, चिन्तन एवं मनोयोग आदि शान्तिमय विधि से की जाने वाली चिकित्सा है, इसी कारण से इसे मानस चिकित्सा या च्लेबीव जेमतंचील भी कह सकते हैं। इसमें व्यक्ति के मनोबल को सुदृढ़ करके जप, पूजा–पाठादि द्वारा रोगों का विनाश करके प्राणों में नवचेतना का संचार किया जाता है।

2 आंगिरसी चिकित्सा– अंगिरा ऋषि से इसका सम्बन्ध होने के कारण इसका नाम आंगिरसी चिकित्सा पड़ा। यह चिकित्सा काफी हद तक एलोपैथिक विधि से समानता रखती है। इस चिकित्सा में अंगो का रस अर्थात् रक्त एक शरीर से दूसरे शरीर में चढ़ाया जाता है तथा शरीर में कतिपय पोषक तत्वों का संचार किया जाता है। इस पद्धति में शल्यकर्म (Surgery) की विधि भी ली जा सकती है।

3 मानुषी चिकित्सा– यह मानवों द्वारा बनाई गई चिकित्सा है। इसमें मनुष्यों द्वारा बनाए गए चूर्ण, भस्म, वटी, अवलेहादि समाहित है। यह चिकित्सा औषधि चिकित्सा है जिसे हम Drug-Theraphy भी कह सकते हैं।

4 दैवी चिकित्सा– देव शब्द से अभिप्राय है देने वाला। जो कुछ हमें देता है वह देव कहलाता है। पृथिवी आदि पंचतत्वों, सूर्य, चन्द्रमा आदि देव है क्योंकि ये सभी हमें बहुत कुछ देते हैं। अतः जल चिकित्सा, अग्नि–वायु चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, प्राणायाम चिकित्सा आदि चिकित्साएँ दैवी चिकित्सा के अन्तर्गत आती है। उदाहरणार्थ ऋग्वेद में अग्नि देव से विविध विकारों को दूर करने की प्रार्थना का उल्लेख है। इसी तरह सूर्य चिकित्सा पर बल देते हुए सूर्य किरणों से समस्त रोगों को जड़ से विनाश करने का वर्णन मिलता है क्योंकि सूर्य किरणों में विभिन्न रोगों को समाप्त करने की क्षमता है।[6] प्राणायाम क्रिया से शरीर में रोधित वायु शरीर में स्थित मलों इत्यादि को नष्ट करके शरीर को स्वस्थ बनाता है। इसके अलावा अथर्ववेद में हवन चिकित्सा से विभिन्न रोगों के दूर होने के संकेत मिलते हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार इस दैवी चिकित्सा को प्राकृतिक चिकित्सा या (Naturopathy) भी कह सकते हैं।

वेदों में वर्णित वैद्य के कर्त्तव्य

वेदों में वैद्य के कर्त्तव्यों का विविध स्थलों पर उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में वैद्य के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह रोग कृमियों का नाश करने वाला हो तथा उसे अपने विषयों की विशेष जानकारी होनी चाहिए। वह सभी प्रकार की औषधियों का संग्रह करे और चिकित्सा का कार्य करते हुए रोग के कारणों को विनष्ट करें। वैद्य का कर्त्तव्य बनता है कि वह ओषधियों द्वारा देह के समस्त विकारों को बाहर निकाल कर शरीर को रोग रहित बना दे।[7] सामवेद का कथन है कि वैद्य व्यक्ति को दीर्घायु प्रदान करे तथा शल्यचिकित्सा के द्वारा टूटी–फूटी हड्डियों आदि को जोड़ना भी उसका परम कर्त्तव्य है।[8] अथर्ववेद में कहा गया है कि वैद्य विभिन्न प्रकार के रोगों को बढ़ने से रोके और विविध औषधियों को बनाकार मनुष्यों को स्वस्थ रखे।[9] वह लगातार अपना चिकित्सा कार्य का अभ्यास करता रहे तथा श्रेष्ठ एवं निपुण वैद्य बनने के लिए असंख्य औषधियों की जानकारी अर्जित करते हुए ऊर्जा एवं शक्तिवर्धक ओषधियाँ निर्मित करे, जिससे मनुष्य सैकड़ों वर्षों तक तेजोमय होकर जीवन –यापन करे।[10] वैद्य को सिद्धान्त तथा क्रियात्मक दोनों पक्षों की जानकारी होनी आवश्यक है तभी वह योग्य तथा निपुण वैद्य कहलाता है।

वेदों में निरोग एवं दीर्घायु प्राप्ति के उपायों की वर्तमान में उपयोगिता

वेदों में निरोगता एवं दीर्घायु से संबन्धित कई मन्त्र है जिनमें विविध देवों से दीर्घायु एवं निरोग बने रहने की प्रार्थना की गई है जिनकी वर्तमान समय में हमारे जीवन में विशेष उपयोगिता है क्योंकि आज

के समय में विविध रोग बढ़ रहे हैं। वेदों के कई मन्त्रों में स्वस्थ रहने के आधारभूत तत्वों का उल्लेख हुआ है। अथर्ववेद में पर्जन्य, मित्र, वरुण, चन्द्र और सूर्य पाँच आरोग्यकारक तत्वों का उल्लेख है, जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से हमारे स्वास्थ्य के रक्षक एवं पोषक है। जैसे पर्जन्य अर्थात वर्षा का जल हमारे लिए शुद्ध व रोगरहित माना गया है, प्राणवायु(मित्र) शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है, जल हमारे देह से दूषित तत्त्वों को बाहर निकालता है, चन्द्रमा मन को शान्ति व शक्ति प्रदान करता है तथा सूर्य हमारे शरीर को विटामिन देते हुए पुष्ट बनाता है। अथर्ववेद में ही निरोग एवं दीर्घायु की प्राप्ति के लिए भोजन के नियमों को बताते हुए पौष्टिक शक्तिवर्धक और रोगनाशक अन्न पर बल दिया गया। परन्तु आज के समय में बढ़ रहे रोगों का कारण हमारा अशुद्ध एवं विषयुक्त भोजन है। हमारे भोजन खाने के नियम ही बदल गये हैं। आयुर्वेद में भोजन के तीन नियम बताएं गए है–1.हितभुक्=हितकारी भोजन करना, 2.मितभुक्= संतुलित मात्रा में भोजन करना, 3. ऋतभुक्= सात्त्विक एवं ईमानदारी से कमाया गया भोजन करना।

इसके अतिरिक्त अन्य कतिपय साधनों का वर्णन भी वेदों में किया गया है– जैसे निरोग रहने के लिए मल–मूत्र के वेग को नहीं रोकना चाहिए क्योंकि उससे नाना प्रकार की बिमारियाँ होती है। वात, पित और कफ त्रिदोषज विकारों को सम रखने से भी शरीर निरोग रहता है। सात्त्विक विचारों को अपना कर मानसिक रोगों से निवृत्ति मिल जाती है। आयुर्वेद एवं अथर्ववेद में भी कहा गया है शुभ विचारों एवं उत्तम भावनाओं से व्यक्ति निरोग रह कर दीर्घायु की प्राप्ति कर सकता है। इसके साथ व्यक्ति को ह्रष्टपुष्ट रहने के लिए वेदों के अनुसार सूर्योदय से पहले उठकर पापों, दुष्कर्मों एवं दुर्व्यसनों का परित्याग करके हमेशा प्रसन्नचित रहना चाहिए।

उपसंहार

प्रत्येक चिकित्सा पद्धति की तरह आयुर्वेद का उद्देश्य भी यही है कि हम सभी स्वस्थ रहें। भारतीय ऋषियों ने अपनी साधना द्वारा प्रकृति के मूलतत्त्वों को जाना–पहचाना, उनका विश्लेषण किया और यह बताया कि यदि प्रयोग करने की विधि आती है, तो संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है। चारों वेदों में दीर्घायु से सम्बन्धित सैकड़ों मन्त्र है। कुछ मन्त्रों में दीर्घायु की प्राप्ति के उपायों का वर्णन मिलता है। जैसे व्यक्ति को रजोगुण एवं तमोगुण से रहित रहते हुए और सात्विक वृत्तियों को अपनाते हुए सत्यनिष्ठता का व्यवहार धारण करना चाहिए। प्राण और अपान शक्ति के संयम के साधन को अपनाकर दीर्घायु की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए। चिन्ता का परित्याग करके सूर्य से दर्शन शक्ति तथा वायु एवं अग्नि से प्राण शक्ति को प्राप्त करना चाहिए। दीर्घायु के लिए अज्ञान का परित्याग करते हुए इच्छा शक्ति, आत्मिक बल एवं सद्गुणों को धारण करना चाहिए। दीर्घायु एवं निरोगता की प्राप्ति के इसी तरह के असंख्य उपायों का वर्णन वेदों में मिलता है। इस तरह संक्षिप्त रूप से कह सकते हैं कि हमारे जीवन में आयुर्वैदिक एवं स्वदेशी चिकित्सा बहुत उपयोगी है जिसका हमें पालन करते हुए आज के समय में बढ़ते रहे रोगों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति–2/6
2. मनुस्मृति–2/7
3. चरकसंहिता–30/23
4. सुश्रुतसंहिता–1/7, चरकसंहिता–30/28, अष्टांगह्रदयम्–1/5/6
5. आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
   ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि।।
   अथर्ववेद–11/4/16
6. परित्वा रोहितैर्वर्णैदीर्घायुत्वाय दध्मसि।
   यथाऽयमरपा असदथो अहरितो भुवत्।। अथर्ववेद–1/22/2.
7. ऋग्वेद–10/97/10
8. सामवेद–184, 244
9. अथर्ववेद–5/29/2
10. अथर्ववेद–2/29/7